डोरीलाल गंगवार
प्रधानाध्यापक, राजकीय प्राथमिक विद्यालय
बाजपुर–2, उधमसिंह नगर

मैं तो शिक्षक ही होना चाहता था

सहायक अध्यापक – रीना चौहान, मंजू बाला, विजय कुमार, राजीव कुमार

सी.आर.सी.सी. – पंकज रस्तोगी

भोजन माता – वीरकली, निर्मला, बिरमा

नामांकन – 133

विशेष –

- समुदाय के सहयोग से स्कूल की जरूरतों को समझने और पूरा करने में मदद हासिल करना।
- खेल, गीत और अभिनय के जरिये पढ़ाई में रस व रंग भरने की कोशिश
- बाकी स्टॉफ व समुदाय का सहयोग हासिल करना।
- बच्चों की ड्रेस, स्कूल की बिल्डिंग, दीवारों आदि पर काम किया।
- बच्चों के सीखने के स्तर को उनके व्यवहार और समाज से जोड़कर देखना।
- बच्चों को पढ़ाने के तरीकों में प्रयोग।
- विशेष जरूरत के बच्चों को पहचानना, उनको यथा संभव चिकित्सकीय सहायता देना और पढ़ाई पर विशेष ध्यान देना, इन बच्चों के प्रति समाज, स्टाफ और बाकी बच्चों के भीतर संवेदनशीलता जगाना।
- ज्ञान के सह सृजन की अवधारणा को कक्षाकक्ष प्रक्रिया में शामिल करना।
- स्कूल के अलावा समुदाय के अन्य कामों में भी आगे बढ़कर सहयोग करना।

मैं तो बचपन से शिक्षक ही होना चाहता था

स्कूल यानी इंसानियत के पाठ पढ़ने की जगह....स्कूल यानी व्यक्तित्व के खुलने और खिलने की जगह...स्कूल यानी ढेर सारी शरारतों की आजादी.. .स्कूल यानी पढ़ने–लिखने के प्रति प्रेम पनपने की जगह...

डोरीलाल जी इन दिनों जिस स्कूल से संबंद्ध हैं वहां स्कूल में ऐसी इबारतों को गढ़ने का प्रयास हो रहा है। डोरीलाल जी 2012 में प्राथमिक विद्यालय बाजपुर 2 में बतौर प्रधानाध्यापक आये। इस छोटे से समय में उनके छोटे–छोटे प्रयासों से स्कूल जो अब तक समुदाय के लिए अराजक तत्वों का अड्डा हुआ करता था, अब भरोसे की जगह होने लगा।

मैं तो बचपन से शिक्षक ही बनना चाहता था....इसी वाक्य के साथ उनसे बातचीत शुरू होती है। बाद मुद्दत किसी से ऐसा सुनने को मिल रहा था। उधमसिंह नगर से 45 किलोमीटर की यात्रा जो खराब रास्तों के बावजूद खुशगवार थी इस वाक्य को सुनने के बाद और भी खुशगवार हो उठी थी।

स्कूल पहुंचे तो डोरीलाल जी कुर्सियां जमा रहे थे, एक क्लास चल रही थी जिसमें कुछ बच्चे दूसरे बच्चों से बातचीत करके कुछ समझने की कोशिश कर रहे थे। डोरीलाल जी कुर्सियां जमाते हैं...बिखरे हुए कुछ कागज

उठाकर डस्टबिन में डालते हैं और कुछ बच्चों से कहते हैं 'जो बच्चे चुपचाप बैठे हैं उन्हें भी बातचीत में शामिल करो...' क्लास में खास अनुशासन नहीं दिखता लेकिन सुशासन या स्वशासन दिखता है...बच्चे निर्भय...मस्ती से भरे हुए...किताबों में लिखे हुए से खेलते हुए, सीखते हुए...

'आखिर क्या था ऐसा कि आप बचपन से शिक्षक बनना चाहते थे?' मैं सिरा बदलना नहीं चाहती। वहीं से बात को आगे बढ़ाती हूं। डोरीलाल जी श्रद्धाभाव से भर उठते हैं। मेरे गुरू राम प्रकाश जी। उनके पढ़ाने का ढंग, उनका व्यवहार, उनके सोचने का ढंग सब कुछ...वो जिस तरह बच्चों को समझते थे, जिंदगी को संवेदना से जोड़कर देखते थे किताबों से नहीं। वो सब मेरे भीतर घर कर गया था। मैं कोई बहुत पढ़ने में तेज नहीं था। संकोची था, शर्मीला...चुपचाप रहने वाला...लेकिन मेरे शिक्षक ने मुझे मेरे संकोच व चुप्पी में पढ़ा। एक शिक्षक जब खुद को बांटता है तो कितनों में बंटता है। मुझे लगता है मैं आज जो कुछ भी हूं, जैसा भी हूं राम प्रकाश गुरू जी की वजह से हूं...और मैं अपने अध्यापन के पेशे से, अपने जीवन से खुश हूं...मुझे लगता है कि अध्यापन के जरिये मैं कितने सारे निश्छल बच्चों से मिल पाता हूं...उनसे बातें कर पाता हूं और कुछ हद तक उनका हाथ पकड़कर चल पाता हूं।

पढ़ाने के अलग–अलग ढंग

मैंने 1996 में पहली नौकरी ज्वाइन की। सबसे पहला स्कूल था बुक्सा जनजाति क्षेत्र का बैतखेड़ी। वहां मैं तीन साल रहा। मैं स्कूल की दीवारों को जिंदा करना चाहता था। स्कूल का हर कोना धड़कता हुआ, महकता हुआ हो। उस वक्त स्कूल में 54 बच्चे थे। मैंने उन बच्चों के साथ मिलकर स्कूल की दीवारों को सजाने का बीड़ा उठाया। पूरी दीवारों को अपने हाथों से सजाया। उन्हे रंगने से लेकर उन पर अपने हाथों से बनी कलाकृतियां लगाने तक।

मुझे खेल कूद, गाना, नाचना, एक्टिंग करना ये सब ठीकठाक आता है। तो बच्चों के साथ जुड़ने में उनके भीतर के डर को संकोच को निकाल फेंकने में काफी सहूलियत होती है। जब तक बच्चे के भीतर से डर, भेदभाव,

संकोच ये सब खत्म नहीं होगा, वो ठीक से पढ़ नहीं पायेगा। मैं पढ़ाने से पहले उनके भीतर की ये पर्तं उतारने की कोशिश करता हूं। जहां तक पढ़ाने के तरीकों की बात है...मुझे तो यही लगता है कि हर दिन बच्चों का मूड बदलता है, हर बच्चे का मूड बदलता है...तो पढ़ाने का तरीका भी बदलता है। अगर एक दिन हमने गाकर या कहानी सुनाकर पाठ शुरू किया तो दूसरे दिन कहीं घूमने जाकर, खेलकर, बच्चे से उसके घर की बात पूछकर उसके जीवन की कल्पना को सुनते हुए, कुछ भी करते हुए पढ़ने की शुरुआत हो सकती है। कई बार पढ़ाने के दौरान महसूस होता है कि यह तरीका कारगर नहीं है, तो बीच में ही तरीका बदलना पड़ता है, नये उदाहरणों से, जिससे बच्चा जल्दी जुड़ सके, उसी वक्त की कोई घटना से, उसी दिन की किसी बात से जोड़ते हुए पढ़ाया जा सकता है। पाठ में दिये गये नामों को बदलकर कक्षा के किन्हीं बच्चों के नामों से जोड़ा जा सकता है। यह भाषा में, गणित में कहीं भी संभव है।

तो बैतखेड़ी के बच्चों से अच्छी दोस्ती हो चली थी। जिस भी स्कूल में गया कोशिश की कि कक्षाएं जीवंत हों सबसे पहले...कि बच्चे महसूस करें कि ये दीवारें, ये स्कूल, ये खेल का मैदान उनका है।

चुनौतियां कहां नहीं

मैं जब इस स्कूल प्राथमिक विद्यालय बाजपुर 2 में आया तो यहां का माहौल ही अजीब सा था। स्कूल अराजक तत्वों का अड्डा था। लोगों में स्कूल के प्रति घोर अविश्वास था। लोग शराब पीकर स्कूल में आते थे, गालियां देते थे। लोगों को लगता था कि ये कोई घोटाला केन्द्र है जहां मिड डे मील, बच्चों की यूनिफॉर्म वगैरह का घोटाला होता है। स्कूल की दीवारें बेरंग थीं, माहौल उखड़ा सा। बच्चों का नामांकन तो ठीक ही था लेकिन आते कम ही थे। मैंने इन सारी चुनौतियों को सहेजा। पूरे उत्साह के साथ काम करना शुरू किया। चुनौतियों को लिखता जाता और उनके उपाय के बारे में लगातार सोचता रहता। सबसे पहला जरूरी काम था समुदाय का विश्वास अर्जित करना। मैंने समुदाय के लोगों से मिलना शुरू किया। उनसे स्कूल की बात नहीं करता। उनकी जिंदगी की, उनकी दिक्कतों को जानने की

कोशिश करता। यथासंभव उनके साथ खड़े होने की कोशिश करता। कोशिश करता कि उनके काम आ सकूं। किसी का राशन कार्ड बनना हो या कोई सर्टिफिकेट...घंटों उनके साथ दफ्तरों में खड़ा रहता...

उनके साथ उठना–बैठना बढ़ता गया। स्कूल में भी बच्चों से दोस्ती बढ़ रही थी। उनके साथ खेल कूद, हल्ला गुल्ला, नाचना गाना और पढ़ाई सब चल रहा था। सहयोगी अध्यापिका थीं रीना चौहान, उनका पूरा सहयोग मिला। लेकिन दिक्कत यह थी कि 133 बच्चों पर हम दो ही शिक्षक थे। रीना जी और मैं। स्कूल में व्यवस्थागत दिक्कतें भी काफी थी। एक दिन समुदाय में मैंने अपनी इच्छा जाहिर की कि स्कूल की दीवारों पर अच्छे से रंग करवाने का मन है...अगले दिन स्कूल के ही बच्चे के पिता आये और बोले 'आप रंग मंगा दो मैं कर दूंगा।' वो पुताई का काम करते थे। यह पुताई के पैसे मैनेज करने की बात नहीं थी बल्कि समुदाय और बच्चों के अभिभावकों का विश्वास जीतने की बात थी। बच्चों में बहुत खुशी थी पुताई को लेकर। स्कूल के बाहर की दीवारों को हमने बहुत सुंदर ढंग से रंगवाया। स्कूल की दीवारें भी खिल उठीं और बच्चे भी। समुदाय के लोगों को भरोसा बढ़ा कि पुताई करने वाला उन्हीं का कोई व्यक्ति था। उन्हें लगा स्कूल में बिना घोटाले के भी कोई काम हुआ। स्कूल की दीवारों की रंगाई से स्कूल को समुदाय में स्वीकार्यता मिली में।

अच्छी स्कूल ड्रेस

इसी बीच मुझे मुक्तेश्वर में अनुराधा सक्सेना जी के स्कूल जाने का मौका मिला। क्या शानदार स्कूल है, क्या अध्यापिका हैं वो। वहां से लौटकर तो मेरा उत्साह चार गुना बढ़ गया। वो तो इतना दुर्गम स्कूल है वहां इतना

कुछ संभव है तो यहां क्यों नहीं हो सकता।

मैंने अपने बच्चों के लिए यूनिफॉर्म सिलवाई। शिक्षकों की कमी को समुदाय से दो शिक्षिकाओं को रखकर पूरा किया। स्कूल में पौधे लगाये...मिड डे मील के स्वाद पर सफाई पर ध्यान दिया और बच्चों के साथ स्कूल की दीवारों को सजाना शुरू किया।

अभी भी इस स्कूल में बहुत दिक्कतें हैं। क्लासरूम थोड़े बेहतर होने हैं, कमरों में ठीक से रोशनी नहीं आती...खेल का मैदान थोड़ा बड़ा होना है, इच्छा है कि बच्चों के लिए खाने के लिए सुंदर प्लेटें लाऊं...जो स्कूल में रहें...देखिये कब और कैसे होगा। कुछ भी करने से पहले दो चीजों से लड़ना पड़ता है, पहले अपने भीतर का भय और दूसरे बाहर की नकारात्मकता। डोरीलाल इस बात को जान चुके थे इसलिए उनका काम करना आसान हो रहा था।

चुनौतियां का अपना मजा है

डोरीलाल जी मस्त–मौला इंसान हैं। वह कहते हैं कि चुनौतियों के बिना भी कोई जीवन है। चुनौतियों का अपना मजा है। उन्होंने अपनी तरह से पहल के रूप में काफी काम किये।

उन्होंने एसएमसी बैठकों में आने वाले अभिभावकों से कहा कि आप लोग कब तक अंगूठा लगायेंगे, हस्ताक्षर करना सीख लीजिए वो बताते हैं कि 'मैंने उन्हें हस्ताक्षर करना सिखाया तो अभिभावकों को बहुत अच्छा लगा। उनके बच्चों को भी इसमें आनंद आने लगा।'

एक और चुनौती यह थी कि यहां ज्यादातर वाल्मीकि समाज के बच्चे हैं।

शुरू में उनमें आत्मविश्वास बहुत कम था। हर काम करने से पहले उनमें एक संकोच रहता था। लेकिन धीरे–धीरे ये दीवारें टूटीं। डोरीलाल जी कहते हैं मेरे स्कूल में जाति, वर्ग, धर्म की दीवारें चकनाचूर हो चुकी हैं। हर बच्चा हर काम करता है और खुश होकर करता है। बच्चों का आत्मविश्वास बढ़ा है।

जब भी मैं कुछ काम करता हूं तो अक्सर लोग कहते हैं कि आप कुछ ज्यादा ही परेशान हो रहे हैं। कभी–कभी मुझे बुरा लगता था लेकिन फिर मैं सोचता कि अगर मैं बुरा भला सोचने लगूंगा तो काम कौन करेगा।

मैंने एक बात अनुभव की कि बच्चे आपस में एक–दूसरे से बहुत सीखते हैं। और अगर उन्हें यह अहसास होता है कि उन्होंने अपने अध्यापक को कुछ नया बताया है तो उनका आत्मविश्वास कई गुना बढ़ जाता है। मैं बच्चों के लिए इसकी जगह बनाने की कोशिश करता हूं। प्रोत्साहन बहुत बड़ी चीज है। मैं बच्चों को प्रोत्साहित करने के नये–नये तरीके ईजाद करने की कोशिश करता रहता हूं।

कुछ खास है उनमें...

एक बार मैंने देखा कि खाने के वक्त एक बच्चा उदास रहता है। बाकी बच्चों की तरह चहकता नहीं है। मैंने उसे लगातार ध्यान से देखना शुरू किया। बाद में पता चला कि उस बच्चे की भूख ज्यादा है। और भोजन माता उसे सीमित खाना ही देती है। वो भूखा रह जाता है। जिस रोज मुझे यह पता चला, मेरी आंखों में आंसू आ गये। कोई बच्चा भरपेट खाना न खाये तो काहे की शिक्षा, कैसा स्कूल... मैंने अगले दिन भोजन माता से बात की। उन्हें समझाया कि बच्चे का पेट ठीक से भरना बहुत जरूरी है। तभी तो वो मन लगाकर पढ़ेंगे, खेलेंगे, बेहतर इंसान बनेंगे। भूखे बच्चे को कौन सा ज्ञान रास आयेगा...उसे भरपेट खाना मिलने लगा। धीरे–धीरे उसके पढ़ने के स्तर में भी सुधार आने लगा है।

मेरे क्लास में एक बच्चा है अभिषेक। उसे बहुत गुस्सा आता था। कॉपी फाड़ देना, मारपीट करना, शोर करना ये सब आम बात थी उसके लिए।

मैंने उस पर अलग से ध्यान देना शुरू किया कि आखिर ज्यादा गुस्सा आने की वजह क्या है। वैसे तो किसी किसी का स्वभाव होता है लेकिन कभी–कभी कुछ और कारण भी होते हैं। बाद में मुझे पता चला कि उस बच्चे को देखने में दिक्कत थी। उसे साफ दिखता नहीं था। उसी झुंझलाहट में उसे गुस्सा आता था। हर बात पर गुस्सा। उसे मैं डॉक्टर के पास ले गया। इलाज करवाया। उसे मोतियाबिंद था। उसका ऑपरेशन हुआ और अब उसे ठीक दिखता भी है और गुस्सा भी कम आता है। उससे पूछो कि अभिषेक गुस्सा नहीं आता अब तुमको तो वो धीरे से हंस देता।

एक बच्ची थी कक्षा एक में 6 साल की। वो स्लो लर्नर थी। कुछ अक्षर वो उल्टे भी बनाती थी। मुझे समझ में आया कि इस बच्ची के साथ अलग से काम करने की जरूरत है। हम उसे अलग से पढ़ाते, उसके साथ वक्त बिताते, उसका आत्मविश्वास बढ़ाते और जो अक्षर वो उल्टे बनाती थी उन पर अलग से वक्त देते...उन्हें तरह–तरह से बनाने की कोशिश करते... धीरे–धीरे वो बच्ची बेहतर सीखने लगी।

कुछ बच्चे स्कूल में कूड़ा बीनने वाले आये। उनमें से एक 11 साल की बच्ची थी। उसे बंदर ने उठाकर फेंक दिया था। जिसके कारण उसके दोनों घुटनों में दिक्कत हो गई थी। उसका चेकअप, इलाज वगैरह ठीक से करवाया। उसे व्हील चेयर दिलवाई। उसके लिए स्कूल के टॉयलेट बेहतर बनाने की कोशिश की। इस सबसे ज्यादा जरूरी था कि साथ के बच्चे उससे प्यार करें। उसके साथ खेलें...उसे अपनापन दें। डोरीलाल जी स्कूल के किस्से बताते हुए भावुक हो जाते हैं वो कहते हैं स्कूल सिर्फ किताबें पढ़ने की जगह नहीं बल्कि इंसान बनने की जगह भी है। अगर हम एक–दूसरे से प्यार करना सीख लें, सम्मान करना सीख लें, एक–दूसरे की मुश्किलों को समझना सीख लें तो रिपोर्ट कार्ड में दो नंबर कम भी आयें तो चलेगा। जिंदगी के रिपोर्ट कार्ड में मानवीय होने के, संवेदनशील होने के, प्यार से भरे होने के अंक जमा होना ज्यादा जरूरी है।

शिक्षक का काम सिर्फ पाठ्यक्रम पूरा करना नहीं उससे बहुत आगे का है। शिक्षक किसी की पूरी जिंदगी को बनाता है। अपने गुरूजी से जो सीखा

वो हमेशा साथ रहता है। अगर वो न होते तो मैं जाने क्या कर रहा होता। मुझे पता था कि इस सब प्रक्रिया में साथी शिक्षकों का, बाकी स्टॉफ का और बच्चों का सहयोग लेना भी जरूरी है। बच्चे का विकास एक समूची प्रक्रिया है। इसमें सभी का शामिल होना जरूरी है। साथियों का बच्चों का भी इन चीजों के बारे में संवेदनशील होना बहुत जरूरी है।

डोरीलाल जी के आगे अभी बहुत सारी चुनौतियां हैं। वो स्कूल के बच्चों की और बेहतर यूनिफॉर्म बनवाना चाहते हैं। वो अपने बच्चों को अच्छी अंग्रेजी बोलते देखना चाहते हैं, स्कूल की बिल्डिंग ठीक करवाना चाहते हैं। कक्षाओं में भरपूर रोशनी भर देना चाहते हैं, वो चाहते हैं कि बच्चों के मिड डे मील के बर्तन स्कूल में ही हों। सुंदर बर्तन। कक्षाओं में फर्नीचर हो और भी बहुत कुछ। उन्हें लगता है कि अभी वो कुछ खास कर नहीं पाये हैं सिवाय बच्चों का प्यार और समुदाय का विश्वास हासिल कर पाने के। उन्हें उनकी तमाम चाहना के साथ हम स्कूल से विदा लेते हैं इस उम्मीद से कि उनका सफर चलता रहेगा। हमारा वापसी का सफर अब और खुशनुमा हो चला था।

(डोरीलाल गंगवार से हुई प्रतिभा कटियार की बातचीत पर आधारित)